मुखौटों को पहचानें

यह बात संभवत: दस साल पुरानी है। रियल स्टेट यानी जमीन-मकानों के व्यवसाय से जुड़े एक व्यक्ति का व्यावसायिक टकराव एक बड़े समाचारपत्र से हो गया। उसे किसी ने सलाह दे दी कि तुम भी समाचारपत्र निकाल लो। उसने ऐसा ही किया। एक अन्य व्यवसायी पर आयकर और आबकारी का छापा पड़ा और मामला रिश्वत से न सुलझता दिखा तो उसे भी ऐसी ही सलाह मिली। फलत: एक नया समाचारपत्र लोगों के सामने आ गया। एक समाचारपत्र तो इस सलाह पर ही प्रकाशित किया गया कि जितनी रिश्वत अधिकारियों में बंटती है उससे कम में तो अपना अखबार होगा जिससे रिश्वत तो बचेगी ही और काम भी आसानी से होने लगेंगें। एक बड़े अखबार की पैदाइश बरसों पूर्व ऐसे ही कारण से हुई थी और अब उसके वारिसों ने उसका उपयोग अपने नये उद्योग स्थापित करने के साथ ही नये क्षेत्रों में विस्तार कर बढ़ा लिया है। यह सब मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ के संदर्भ में कहा गया है। इन दोनों प्रदेशों में जो अखबार रोज लोगों को दिखाई देते हैं उनमें से संभवत: बीस प्रतिशत ही ऐसे होंगे जिनके प्रकाशित होने के व्यावसायिक या निपटाओ-सुलझाओ कारण न हों। इसी आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शेष भारत की भी स्थिति इस मामले में इससे कुछ ज्यादा भिन्न नहीं होगी।

ऐसे अखबार जब पैदा होते हैं तब उनकी मानसिकता होती है कि वे अपने उन समाचारपत्रों पर अपना अतिरिक्त धन लगाते हैं। वह धन जो उनके व्यवसाय को रिस्क में नहीं डालता है। सामान्य भाषा में जिसे फेंक देने या अंग्रेजी में थ्रो अवे कहते हैं। मानकर चलते हैं कि इससे कमाना नहीं है, आने वाले समय में थोड़ा बहुत लगा भी सकते हैं। यही समाचारपत्र दो-तीन या ज्यादा से ज्यादा पांच साल बाद अपनी धन उलीच देने वाली मानसिकता को ताक में रखने लगते हैं और फिर उसे भी अपने व्यवसाय का हिस्सा बनाते हुए उस विनियोग की वापसी का ही प्रयत्न करने लगते हैं। दो-एक उदाहरणों से समझें। एक समाचारपत्र जब प्रारंभ हुआ तब उसने अपने सलाहकार से पूछा सौ करोड़ तक तो कोई चिन्ता नहीं है। इसके बाद तो नहीं लगाना पड़ेगा। सलाहकार ने कहा कि नहीं इसके बाद तो 'माल' आने लगेगा। एक समाचारपत्र की रिश्वत ही इतनी बंटती थी कि एक समाचारपत्र आसानी से प्रकाशित हो जाये। एक को तो आयकर और आबकारी विभाग को इतना देना पड़ रहा था कि उसको अपने पुराने दिनों में लैटना पड़ता। तो इन सब ने रास्ता निकाला समाचारपत्र प्रकाशित करें।

ऐसे समाचारपत्रों की मूल मानसिकता समाचारपत्रों के वास्तविक तथा मूल आधारों से एकदम भिन्न होती है, होगी ही। पर ऐसे भी उदाहरण हैं जो व्यवसाय की सुरक्षा के बजाय समाज की किसी समस्या या मुद्धे के लिए ही प्रकाशित किये गये हैं। एक उदाहरण यह देखें। तीन दोस्तों ने सोचा क्यों न वे एक समाचारपत्र प्रकाशित करें जिससे लोगों को अंग्रेजी और देशी राज के विरोध के लिए तैयार किया जा सके और उन लोगों की मदद की जा सके जो इस तरह का आंदोलन कर रहे है। उन्होंने ऐसा कर

दिखाया और बाद में वह एक सफल समाचारपत्र भी बना। एक लेखक-पत्रकार एक पृथक राज्य के लिए चल रहे आंदोलन से जुड़ा था और एक साप्ताहिक समाचारपत्र प्रकाशित कर रहा था। उस आंदोलन के प्रमुख ने उनसे कहा कि वह इसे दैनिक कर दे। उसे कुछ आर्थिक सहायता आंदोलन से मिलेगी। अखबार दैनिक हो गया और सफलता की सीढ़ियां चढ़ते हुए एक समय वह समाचारपत्र भारत के पहले दस में तीसरे-चौथे क्रम पर बना रहा। एक पत्रकार जो इस समाचारपत्र से जुड़े रहे थे, किसी कारणवश पृथक हुए तो उन्होंने अपनी इसी विशेषता और जुड़ाव को अपनाया। व्यवसायी वर्ग के होने के बावजूद उनके विचार प्रगतिशील थे। वह उनके इस समाचारपत्र में भी परिलक्षित हुए। पत्रकार और समाचार पत्रों की ऐसी कुछ कथायें आपके पास भी होगी।

समाचारपत्र प्रकाशन की इन दोनों मानसिकताओं में मूल अंतर है। एक केवल व्यावसायिकता के लिए है और दूसरा अपने मकसद या विचार के साथ उसकी व्यावसायिकता के साथ जुड़ा है और जुड़ा रहना चाहता है। जब हम समाचार- पत्रों की सामाजिक भूमिका और उनके समाचार मूल्यों के संबंध में चर्चा करते हैं तब हमें इन मानसिकताओं को ध्यान में रखते हुए ही विचार करना होगा। यह हुआ है और सदा होगा कि मूलत: व्यावसायिकता की मानसिकता वाले समाचार-पत्र सामाजिक सुधार तथा मूल्यों का मुखौटा तो लगाकर रखेंगे पर वे अपने मुनाफे के साथ कोई समझौता नहीं करना चाहेंगे। जाहिर है उनके लिए काम करने वालों का चुनाव वे इसी मानसिकता की संगति में करना चाहेंगे और यह भी चाहेंगे कि उनकी बाह्य छवि सामाजिक विकास और सुधार की बनी रहे। एन. राम सहित बहुत से बड़े पत्रकारों ने इसके संबंध में कहा है कि इस मानसिकता की पराजय केवल पाठकों के माध्यम से ही हो सकती है। एक अर्थ में यह ठीक लगता है। कम से कम तीन से अधिक दशकों में यह अनुभव रहा है कि सरकार, व्यवसायी और राजनीति के खिलाड़ी विचार तथा ध्येय-मकसद केन्द्रित पत्रकारिता के पोषक नहीं हैं। वे उनके साथ खड़े हो जाते हैं जो उनके मकसद को पूरा करने के साथी बनते हैं। ऐसे में आसानी से अपनी भूमिका बदलने के तैयार कौन होगा, यह समझना कोई बडी उलझन नहीं है।

मुझे लगता है कि यह ठीक समय है जब वे लोग जो पत्रकारिता को सामाजिक विसंगितियों से मुक्त तथा मानवीय मूल्यों पर केन्द्रित पत्रकारिता को सामाजिक विकास के लिए आवश्यक मानते हैं, वे इस बारे में विचार करें और पाठकों के बीच जाकर वस्तुस्थिति को बताते हुए उन्हें अपनी भूमिका के लिए तैयार करें। साथ ही, एक जरूरी उपाय को मजबूती दें। यह उपाय है ध्येयनिष्ट, मूल्याधारित, समाजोन्मुख पत्रकारिता पर केन्द्रित समाचारपत्र तथा अन्य माध्यम स्वरूपों को व्यावसायिक मीडिया के बरक्स खड़ा करने के लिए आपसी ताने-बाने तैयार करें। ऐसा करेंगे तो निश्चय ही अच्छे दिन आयेंगे।

****